आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023

Received: 15/11/2023; Accepted: 22/11/2023; Published: 26/12/2023

समकालीन हिंदी कविता में महानगरों का यथार्थ चित्रण

सच्चिदानन्द मिश्र
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला,
धौलाधार परिसर 1, जिला- कांगड़ा
हिमाचल – 176215
मो.9415040844
इमेल-sacchidanandm44@gmail.com

सच्चिदानन्द मिश्र, **समकालीन हिंदी कविता में महानगरों का यथार्थ चित्रण** ,आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023,(480- 488)

सारांश : समकालीन कविता विचार और संवेदन के सन्तुलन की कविता है । निःसंदेह समकालीन कविता की आत्मा ही 'वैचारिक सन्तुलन' है, जिसे कवियों ने अपनी रचनाओं में महानगरीय जीवन के चित्रण में अभिव्यंजित किया है। साथ ही सामाजिक संवेदना को सशक्त रूप में उभारा है। इस कविता ने जहाँ समाज की मृत प्राय आत्मा के स्पंदन में सजीवनी का कार्य किया है, वहीं इनमें विषमताओं से व्याप्त परिवेश के प्रति आक्रोश व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत रूप में अभिव्यक्त हुआ है। समकालीन कवियों ने जहां महानगरों की समृद्धि, भौतिक सम्पन्नता और ऐशो इशरत भरी जिन्दगी का वर्णन किया है, वहीं अभावों में पले निर्धनों के शोषण तथा त्रासदियों का भी चित्रण प्रतीकात्मक शैली में किया है। समकालीन कविता महानगरीय जीवन के प्रायः सभी पहलुओं को उभारने में सफल रही है। इसमें उच्च मध्य और निम्न वर्ग की जीवन अनुभूतियों और अनुभव तथा जीवन के विभिन्न कोणों का सजीव चित्रण हुआ है।

बीज शब्द: समकालीन, महानगर, संघर्ष, त्रासदी, विषमता, विडम्बना, संवेदना।

आलेख: महानगर विराटता का द्योतक ही नहीं, वरन एक ऐसा महासागर है जिसमें बहुरूपी मानवों के भाव-विचारों की बहुरंगी तस्वीरें, भौतिक सुखों की रंगीनियत तथा त्रासदियों से जूझते संघर्ष करते लघु-वृहद् जीवन समाहित हैं । इसमें बदलते परिवेश में साँसे ले रहे मनुष्य की धड़कनें, हर्ष अवसाद की ध्वनियाँ और चिन्ताओं के ताण्डव सतत् आन्दोलित हैं। यह चिन्तना और जीवन के विविध पक्षों और कोणों का महत् कोश है जो विभिन्न वर्गों की अनभूतियों और अनुभवों के खट्टे-मीठे आस्वादनों को संजोये हैं। इन्हीं महानगरों से जुड़े, इनको निकट से देखने-परखने वाले भुक्तभोगी कवियों की अन्तश्चेतना महा- नगरीय जीवन की

त्रासदियों, विसंगतियों और विद्रूपताओं से जागृत हो उठी है। फलतः उनकी लेखनी इन महानगरों के चित्रण में रम गयी।

समकालीन कविता महानगरों का सजीव बिम्ब उभारने में पूर्णतः सफल रही हैं। इसमें प्रायः वही तेवर मिलते हैं जो पूर्व के दशकों में प्राप्त होते हैं किन्तु इसमें नये विचार, संवेदनाओं के प्रस्तुतीकरण की नवीनता, नये प्रतीकों-बिम्बों के साथ भाषागत नव नवोन्मेषता की भी विशेषता मिलती है। समकालीन कविता विचार और संवेदन के सन्तुलन की कविता है । निःसंदेह समकालीन कविता की आत्मा ही 'वैचारिक सन्तुलन' है, जिसे कवियों ने अपनी रचनाओं में महानगरीय जीवन के चित्रण में अभिव्यंजित किया है। साथ ही सामाजिक संवेदना को सशक्त रूप में उभारा है। इस कविता ने जहाँ समाज की मृत प्राय आत्मा के स्पंदन में सजीवनी का कार्य किया है, वहीं इनमें विषमताओं से व्याप्त परिवेश के प्रति आक्रोश व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसकी प्रवृत्तियों में प्रकृति से निकटता, सांस्कृतिक दबावों के प्रति चिन्ता, छोटी-छोटी समस्याओं वस्तुओं और स्थितियों के प्रति लगाव सत्ता और व्यवस्था के छलावों के प्रति जागरुकता, आदमीयता की पहचान तथा महानगरीय सभ्यता के खोखलेपन के बोध को महत्व दिया गया है। यदि महानगरीय जीवन के सत्य को धरातल पर विश्लेषित किया जाये तो समकालीन कविता उसके सच्चे यथार्थ का प्रत्यक्ष दर्शन करती है।

समकालीन कविता महानगरीय जीवन-समाज तथा समसामयिक विषमताओं व विडम्बनाओं का दस्तावेज है, जिसमें व्यक्ति की नियति, सोच, आशा-निराशा, सुख-दुख, संघर्ष, निर्दयता, हिंसा प्रवृत्ति और जटिलताओं के चित्र अंकित हैं। यह समाधानों के लिए भटकते प्रश्नों का आकर है। कवियों ने ऐसे ही चित्रों को प्रतीकात्मक एवं सहज बोधगम्य भाषा-शैली में नवीनता के साथ, उभारने का सफल प्रयास किया है। जिसमें मानव अपने आप की तस्वीर देख सकता है। महानगरों से जुड़ी कविताओं में व्यस्ततम जीवन, गर्मी से मुरझाये हाँफते- दौड़ते आदमियों, बसों, ट्रकों, टैम्पों, कारों आदि के प्रदूषण, दुर्घटनाओं, विज्ञापनों की अतिशयता तथा आफिसों से लेकर फिल्मी दुनियाँ तक के चित्रों को संजोया गया है। साथ ही इनमें अजनबीपन, बनावटी व्यवहार, औपचारिकताओं और अनन्त अपेक्षाओं आदि का भी सजीव चित्रण है। इस सन्दर्भ में डॉ. कुंवर बेचैन की 'महानगर : एक शब्द चित्र' कविता उल्लेखनीय हैं-

"लम्बी प्यास, मुखौटे चेहरे,

सूखी हंसी, ढोंग, मुस्कानें,

हिलते हाथ, थके सम्बोधन,

अजनबीअयत, भूली पहचानें

जलती आंख सुलगते सपने

हाथ तापते हुए आदमी"(1)

यही नहीं, भागती दौड़ती भीड़, पोस्टरों से रंगी दीवारें, नंगी अधनंगी तस्वीरें, बॉस, क्लर्क, गुटबन्दी, मैच कमेन्ट्री, लड़की, फिल्मी सितारे आदि भी महानगर की पहचान बन गये हैं। मानो यह महानगर नहीं, कोई अजायबघर है जिसमें रुचि के अनुरूप हर तरह के जीव और वस्तुएं उपलब्ध हैं। व्यस्त त्रस्त, जीवन और दोस्ती के बदलते मायनों को व्यक्त करती रामप्रकाश गोयल की कविता एकदम सटीक बैठती है-

"जिस किसी को देखिए वह व्यस्त है,

और इस कारण से ही वह त्रस्त है;

दोस्ती तो बस अजूबा हो गयी,

इसलिए अब जिन्दगी ही ध्वस्त है ।"(2)

युवा कवि अरविन्द चतुर्वेदी ने 'शहर : एक दुःस्वप्न' कविता में महानगरों की हड़बड़ी और पसीने से लथपथ बेतहाशा भागते, धक्के खाते अपने आप को बचाते और दूसरों को कुचलते आगे बढ़ते लोगों की दानवीयदशा के चित्र खींचे हैं-

“छाती की पसलियों को चरमराता

दबोचता है शहर

एक राक्षस का पंजा कसता है गले पर "(3)

महानगरीय मानव जीवकोपार्जन की चिन्ता में डूबा अपने दुःख-दर्द को कहने-सुनने का भी अवकाश नहीं निकाल पाता। अपनी बेबसी पर आंसू बहाने तक का भी समय उसके पास नहीं है वह अपने आंसुओं को भी आंखों के कोटरो में छिपा लेता है। उसकी इसी विवशता भरी जिन्दगी को कविवर मदन मोहन परिहार ने नज़दीक से जाना और उसे अपनी कविता में उकेरा है-

“हम लोग / कमरे की दीवार पर / दूर-दूर /

टंगे हुए / चित्रों की तरह हैं/जो /

एक दूसरे को / देखते तो हैं/

मगर / बोलते नहीं”(4)

महानगरों का परायापन, अपनत्व का अभाव, अनजानापन, अकेलापन और उदास जीवन की विसंगतियां कवियों का ध्यान अपनी ओर खींचती रही है। दिल्ली जैसे भीड़ भरे और संवेदना विहीन महानगर में कवि राधेश्याम बंधु को प्रेम के घर की तलाश रहती है किन्तु हताशा-निराशा ही हाथ लगती है। अतः कवि के अंतर्मन से यह पंक्तियां अभिव्यक्त हुई हैं-

"आदमी की भीड़ में तनहा खड़ा है. आदमी,

प्यार का घर खोजता यूँ फिर रहा है आदमी,

राजधानी दिल की दिल्ली में भी दिलवाले कहाँ ?

दिल के बदले दिल्लगी सहता यहाँ है आदमी ।"(5)

देश का दिल कही जाने वाली दिल्ली में प्यार कहाँ ? यहाँ धूर्तता, छल-प्रपंच, घृणा, द्वेष, घुटन आदि के सिवा क्या रखा है ? उदास प्यास भरी नजरें, गले लगाकर घात करना, अपरिचितों जैसा व्यवहार, नफरतों का जहर पीना, झूठे रिश्ते-नातों की बहुतायत इन महानगरों के बोधक हैं। ये तो 'दर्दों के घर' है। डॉ. सुधारानी शर्मा अपनी कविताओं में इसी स्थिति पर व्यंग्य कहती हैं-

"सबने अपने ही दर्द पाले हैं।

मन में बुनते ये काले -जाले हैं।

सांस लेने में एक घुटन-सी है

जिन्दगी अब धुआं धुआं -सी है।"(6)

कवियों ने नित्यप्रति नगर वधू-सी सजी दिल्ली की चमक-दमक को देखकर यहां बसने की लुभावनी चाह लिए मासूम लोगों की बुझी आँखों, बेबसी में जी रहे लोगों की वास्तविक स्थिति का भी एहसास कराया है। 'सूरज और अंधकार' कविता में दिनेशचन्द्र सिंह 'प्रभाकर' ने अपने उद्गार व्यक्त किए हैं-

"तुमने दिल्ली के चांदनी चौक को ही दीवाली समझ ली है,

किन्तु इसी दिल्ली की वीरान-सूनी-सपाट गलियों में

बेवस भावहीन आंखों की ज्योति

कितनी बार बुझती है, मिटती है।"(7)

यही नहीं, यहाँ तो राह चलते कहीं भी किसी तिराहे और चौराहे में सरेआम उन वेबसों का कत्ल भी होता है जो ढ़ेर सारी उम्मीदों को अपने कंधों में उठाए इस शहर में आए थे। कत्ल के बाद कत्ली बेगुनाह बना स्वच्छन्दता से विचरण करता है उसमें तनिक भी डर या पश्चाताप नहीं दिखता। प्रभाकर जी ने इसी दृश्य को चित्रात्मक शैली में उजागर किया है-

"और तुम्हारा कनाट सर्कस !

जहाँ ऊँची हील की चप्पलों और अधखुली कांटेदार

छातियों का नश्तर लगाती ममिनें,

इन बेवस लोगों का सरेआम कत्ल करती फिरती हैं

जिनका न कोई जुल्म गिना जाता है न कोई सजा "(8)

महानगरों की फैशन-परस्ती, किसी से छिपी नहीं है अपने शारीरिक सौष्ठव को आकर्षक बनाने के लिए सुविधा संपन्न स्त्रियां डाइटिंग करती हैं, चटकीली पोशाक पहनती हैं, स्वच्छन्दता की चाह तथा सौन्दर्य-प्रदर्शन को अपनी जिंदगी का अभिन्न अंग मान बैठी हैं। समकालीन कवियों ने इनसे जुड़े विभिन्न चित्रों को अपनी कविताओं में संजोया है। रमेशचन्द्र गुप्त की "दिल्ली-दर्शन' कविता में ऐसे व्यंग्यपूर्ण दृश्य उभरे हैं-

"दृश्य रंगीन था

कुछ नव यौवनायें स्लीवलेस परिधान व जीन्स में

नारा लगा रही थीं

नारी स्वातन्त्र्य जिन्दाबाद

फिल्मों में नारी अंगों का अश्लील प्रदर्शन

बन्द करो बन्द करो"(9)

कवि महानगर को दानवी प्रवृत्ति और धूर्तता की प्रतिमूर्ति मानता है। जहाँ कान्तिहीन मुखमण्डल के मानव दूषित वायु में साँस लेते हैं तथा विषैले वातावरण में अमानवीयता के शिकार बनते हैं। यहां वे ऐसे वातावरण में जी रहे हैं जहां हर रोज मृत्यु से उनका साक्षात्कार होता है। देशी-विदेशी विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के संगम स्थल महानगरों में मानवता का ह्रास और दानवता का ताण्तव अबाध गति से चल रहा है ।

“जीवन चलता यहाँ यंत्रवत

हर कोई है मन में आहत,

उदर-भरण की यह मजबूरी

बढ़ा रही अपनों से दूरी।

यहाँ मनुज अपने में जीता

याद न करता जीवन बीता,

आँखों में देते सपने भर

महानगर के ये छोटे घर।"(10)

महानगरों की खोखली सभ्यता, अजनबीपन, आवास-निवास की समस्या, मंहगाई की मार और मानसिक उद्विग्नता को भी कवियों ने अपनी कविताओं में प्रमुख रूप से स्थान दिया है। इस सम्बन्ध में मंगलेश डबराल की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"बहुत बड़े इस नगर में

हमें मिली छोटी सी एक जगह

थोड़ी सी हवा एक बिस्तर

मुसीबतें याद रखने के लिए

"एक डायरी ।"पी(11)

समकालीन कवियों ने जहां महानगरों की समृद्धि, भौतिक सम्पन्नता और ऐशो इशरत भरी जिन्दगी का वर्णन किया है, वहीं अभावों में पले निर्धनों के शोषण तथा त्रासदियों का भी चित्रण प्रतीकात्मक शैली में किया है। कविताओं में कहीं भेड़िये मेमनों का रूप धरे बैठे हैं, कहीं अजगरी शुभ कामनाएँ व्यंजित है, कहीं मन कस्तूरी मृग जैसा भटक रहा है, कहीं मासूमों का खून पीने को जीभ लपलपा रही है, कहीं बारूद बिछाकर रक्त की नदियां बहायी जा रही हैं, कहीं चढ़ती जवानी बुढ़ापे को ओढ़ रही है और कहीं वफादार एवं ईमानदार नौकरी पेशा कुत्ते चापलूसी को सुखमय जीवन का साधन समझ बैठा है-

"दाँत दिखाता है/दुम हिलाता है।

बहुत लम्बी हांकता है/हर फरे में झांकता है/

यह मालिक का कुत्ता"(12)

एक ओर अभाव ग्रसित गरीब शहर की चमक-दमक बरकरार रखने के लिए दिन-रात एक करता है कमर तोड़ मेहनत करता है और उसे दो जून की रोटी नहीं मिल पाती है, वहीं दूसरी ओर अधिकारियों और उद्योगपतियों के घर फिजूलखर्ची के लिए धन से भरे है। 'हवेलियाँ और झोपड़ियाँ' शीर्षक कविता में मुकुन्द देवी शर्मा ने धनवानों और निर्धनों के बच्चों का यथार्थ चित्रण कर मानवीय संवेदना को उजागर किया है-

"शाम को ऊपर वाले साहब के बच्चे

सज धजकर निकलते हैं

तो दूसरी ओर फटे पुराने चीथड़ों में

पसलियां चमकती हैं

देह की हड्डी हड्डी दिखती है

आयाओं के बच्चों की"(13)

इन कवियों ने शोषित साधारण-जन और लघु मानवों की विवशता को बहुत नजदीक से देखा और उसे कविता में स्थान दिया है। इन्होंने आदमी की खामोशी और उसकी चुप्पी को अपनी आवाज दी है। जो इस दौर की कविताओं में साफ देखी जा सकती है। कवि हरिशंकर सक्सेना ने कहाँ सुनहरा कल' कविता में लघु मानव के शोषण और उसकी दैनिक स्थिति को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है, साथ ही महानगरों की टुकड़े-टुकड़े हिस्सों में बटी जिंदगी में सुनहरे कल पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। सड़कों का प्रतीक लेकर वे आदमी की जिंदगी में झांकते हैं -

"महानगरों की सड़के

पगडंडी को निगल रही

बर्फीली चट्टानें भी

अब उन पर पिघल रही।"(14)

आज के महानगरों की स्थिति इतनी निर्दयतापूर्ण बन चुकी है कि कवि भी उस पर तरस खा रहा है। कवि न चाहते हुए भी अपनी व्यंग्य शैली से उसपर चोट कर यथास्थिति में सुधार की संभावनाएं तलाश रहा है। कवि ज्ञानप्रकाश कुमुद ने अपनी कविताओं की पंक्तियों में इसे उभरा है -

"बिना पिए मदहोश बना मैं, अगणित सपना लिए जिया हूं

प्रतिबंधित मुस्कान अधर की, देखो कितना गरल पिया हूं

मृग-जल से सारे आकर्षण चलते मुझको भारी उम्र में

जाने कितनी उठी उंगलियां मुझ पर मेरे महानगर से।"(15)

पिछड़े ग्रामीण इलाकों से विकसित महानगरों की ओर श्रम का प्रवाह इस नए दौर का विशेष आर्थिक नियम बनकर उभरा है। आप दिल्ली को देखें, कलकत्ता को देखें, मुंबई को देखें या और अन्य बड़े नगरों को देखें तो इन बड़े नगरों और महानगरों का अपार विस्तार हुआ है। इन नगरों की आबादी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार उनके क्षेत्रफल में भी अप्रत्याशित विस्तार हुआ है। इन महानगरों के अंदर के भाग समृद्ध और संपन्न वर्गों के निवास के केंद्र बन बनकर उभरे हैं, जहाँ वैभवयुक्त, ऐश्वर्यसंपन्न, सुविधासंपन्न, नव धनाढ्यों की जरूरतों की पूर्ति में ही सरकारें लगी हुई हैं। लेकिन इन केंद्रों के बाहर फैले हुए महानगरों के उपनगरीय इलाके हैं। इन इलाकों में वे लोग झुग्गी-झोंपड़ियाँ बनाकर बसे हैं, जो ग्रामीण परिवेश से बड़े सपने लेकर आए थे। लेकिन वे शहरों में जड़ें जमाने में अक्षम हैं। 'हरित क्रांति' ने जिस 'नगरीकरण' को तेज किया है वह एक मायने में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थ में 'नगरीकरण की प्रक्रिया नहीं, वह तो एक प्रकार से नगरों के बड़े पैमाने पर 'ग्रामीणीकरण' की प्रक्रिया है। एक विशाल ग्रामीण जनसमूह अपनी जड़ों से उखड़कर महानगरों में आजीविका खोजने को विवश हुआ है। यह जीवन-शैली के हिसाब से तीन चौथाई ग्रामीण है और एक चौथाई नगरवासी। इस वृहत जन-समूह के लिए झुग्गी-झोपड़ियाँ हैं, आवास नहीं, महानगरों की सुविधाएँ तो हैं नहीं, ग्रामीण सुरक्षाएँ भी उनसे छिन ली गई हैं।

निष्कर्ष:

इस प्रकार समकालीन कविता महानगरीय जीवन के प्रायः सभी पहलुओं को उभारने में सफल रही है। इसमें उच्च मध्य और निम्न वर्ग की जीवन अनुभूतियों और अनुभव तथा जीवन के विभिन्न कोणों का सजीव चित्रण हुआ है। कवियों की अन्तश्चेतना से प्रसूत कविताओं में समसामयिक यथार्थ और आदर्श का मणिकाञ्चन योग है। महानगर के त्रासदी भरे जीवन और घुटन भरी जिन्दगी को संवेदना की नवीनता नए प्रतीक, बिम्ब और भावानुरूप भाषा के सौष्ठव से अभिव्यक्ति मिली है । इसमें वैचारिक सन्तुलन' का सफल निर्वाह हुआ है। सामाजिक परिवेश के कवि का आक्रोश व्यक्तिगत स्तर पर अभिव्यक्त न होकर सामाजिक स्तर पर उभारा है। मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति कवि की चिन्ता मुखरित हुई है। महानगरीय मानवों की जीवन शैली, चिन्तन, हर्ष विषादमयी स्थितियाँ, व्यवहार की कृत्रिमता यन्त्र चालित जीवन पद्धति, अकेलापन, अजनबीपन, निराशा, अभाव, बेवसी, हिंसा, भौतिकता, अनैतिकता, दानवता, खोखली सभ्यता, शोषित लघु मानव आदि का बिम्बाङ्कन सामिप्राय और सटीक है। इस दशक के कवियों के यथार्थ चित्रण में सुधारात्मक दृष्टिकोण है। उनकी मान्यता हैं कि महानगर मानवीय मूल्यों का पोषक तथा जीवन के सुनहरे कल को साकार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाये । कविता से ये अपेक्षा की जाती है कि वह महानगरीय जीवन के उन गहनतम, सूक्ष्मतम पक्षों को उजागर करेगी जो पूर्व के दशकों में अभिव्यक्त नहीं हो सके और महानगरों की महानता को पुनर्स्थापित करने में प्रयासरत होगी । महासागर के गुणों से मण्डित होने पर ही महानगर के नाम की सार्थकता सिद्ध हो सकती है। जिस प्रकार समुद्र अपने गर्भ में अनेक विसंगतियों और

विषमताओं को समाविष्ट कर मोती जैसे रत्नों को ही प्रदान करता है उसी प्रकार महानगर अनेक विद्रूपताओं और विडम्बनाओं का आकार होकर यदि सद्भाव और सद्विचारों को जन्म दे सके तो उसका सत्यं शिवं और सुन्दरं का त्रिवेणी, रूप, मोहक होगा।

संदर्भ सूची:

1. डॉ. कुंवर बेचैन, सन्नाटा मत बुनो, पृ. 40
2. रामप्रकाश गोयल, 'दर्द की छांव में', सन् 1987 पृ. 63
3. 'कतार' पत्रिका, जनवरी-मार्च 1989, पृ. 24
4. आकाशवाणी पत्रिका, जून 1983, पृ. 16
5. 'इन्द्रप्रस्थ भारती' पत्रिका, अक्टूबर-दिसम्बर 1990, पृ. 109
6. डॉ. सुधारानी शर्मा, व्यथा के ऊपर शिवालय, 1989, पृ. 9
7. दिनेशचन्द्र सिंह 'प्रभाकर', यादों के आर-पार, 1988, पृ. 36
8. दिनेशचन्द्र सिंह 'प्रभाकर', यादों के आर-पार, 1988, पृ. 36
9. 'अभिव्यक्ति' पत्रिका, दिसम्बर 1990, पृ. 61
10. https://www.apratimblog.com/mahanagar-ke-ghar-kavita/
11. मंगलेश डबराल, घर का रास्ता, पृ. 76-77
12. रामेश्वर कांबोज 'हिमांणु', अंजुरी भर आसीस - पृ. 95
13. मुकुन्द देवी शर्मा, दर्द के स्वर, 1990, पृ. 24
14. डॉ. कुंवर बेचैन, सन्नाटा मत बुनो, 1988, पृ. 61
15. ज्ञानप्रकाश कुमुद, मेरे महानगर, पृ.28

****